TDC Part I HINDI HONS

Paper- I प्रथम पत्र

हिंदी साहित्य का इतिहास

आदिकाल : नामकरण और प्रवृत्तियाँ

हिंदी साहित्य के इतिहास में लगभग 8वीं शताब्दी से लेकर 14 वीं शताब्दी के मध्य तक के काल को 'आदिकाल' कहा जाता है | दसवीं से चौदहवीं शताब्दी का काल, जिसे हिंदी साहित्य का 'आदिकाल' कहते हैं, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही बढ़ाव है | प्रारम्भिक काल को साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने 'वीरगाथा काल', 'चारण काल' या सिद्ध-सामंत काल' कहा है | 'वीरगाथा काल' नाम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दिया था | उन्होंने संवत् 1050 (सन् 983) से संवत् 1375 (सन् 1318 ई.) तक आदिकाल की सीमाएँ मानी थीं |

आदिकाल का नामकरण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक काल की अपभ्रंश और देशभाषा काव्य की बारह पुस्तकें साहित्यिक इतिहास में विवेचन के योग्य समझीं थीं, जिनमें 'विजयपाल रासो', 'हम्मीर रासो', 'कीर्त्तिलता', 'कीर्त्तिपताका', 'खुमान रासो', 'बीसलदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो', 'जयचन्द्र प्रकाश', 'जयमयंक जसचन्द्रिका', 'परमाल रासो', 'खुसरो की पहेलियाँ' और 'विद्यापति की पदावली'| आचार्य शुक्ल का विचार था कि इन बारह पुस्तकों के आधार पर आदिकाल का लक्ष्य-निरूपण और नामकरण हो सकता है | इनमें से अंतिम दो तथा 'बीसलदेव रासो' को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थ वीरगाथात्मक हैं | अतः 'आदिकाल' का नाम 'वीरगाथा काल' रखा जा सकता है |

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता देखकर भले ही हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक काल का नामकरण 'वीरगाथा काल' कर दिया हो, किन्तु उनके समय

में ही अपभ्रंश की अन्य सामग्री का भी पता चल चुका था, किन्तु उन्होंने उसका उपयोग नामकरण के लिए नहीं किया क्योंकि उनकी दृष्टि में वे कृतियाँ विवेचन योग्य नहीं थीं | उनके अनुसार या तो उनमें से कुछ पीछे की रचनाएँ थीं या कुछ 'नोटिसमात्र' और कुछ जैन-धर्म की पुस्तकें थीं | ऐसी स्थिति में स्वयं आचार्य शुक्ल भी 'वीरगाथाकाल' नामकरण के सम्बन्ध में पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे |

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' का समय 993 ई. से 1318 ई. तक माना था, क्योंकि वे इस कालावधि में वीरगाथाओं की रचना-प्रवृत्ति को प्रधान मानकर चले थे | किन्तु बाद उन रचनाओं की प्रामाणिकता और प्रवृत्ति का अध्ययन करने पर वीरगाथा-प्रवृत्ति की प्रधानता प्रायः अस्वीकृत हो जाती है; अतः शुक्ल जी द्वारा दिया गया 'वीरगाथा-काल' नाम भी उचित नहीं रह जाता | अन्य कई विद्वानों ने पहले भी इस पर आपत्ति की है | अतः अब यह प्रश्न उठता है कि आदिकाल को किस नाम से पुकारा जाए ? जहाँ तक अन्य विद्वानों का मत है तो इस काल को डॉ. ग्रियर्सन ने 'चारण काल' मिश्र बंधुओं ने 'प्रारम्भिक काल' डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'आदिकाल' डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संधि-काल एवं 'चारण काल' राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध सामंत काल' और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'वीर काल' नाम दिया है |

आचार्य शुक्ल ने जिन रचनाओं के आधार पर 'वीरगाथा-काल' नामकरण किया था | उनमें से कुछ तो पीछे की सिद्ध हो चुकी हैं और कुछ 'नोटिसमात्र' थीं साथ ही कुछ कुछ जैन धर्म की उपदेश-पुस्तकें थीं | 'रासो' नामक ग्रंथों के आधार पर वीरगाथाकाल की कल्पना की गयी है, किन्तु 'रासो' ग्रंथों की परंपरा, अपभ्रंश गुजराती साहित्य में मिलती है | इन रासो ग्रंथों में वीर रस के स्थल बहुत ही कम हैं, शृंगार और भक्ति के अधिक | अतः शुक्ल जी का दिया गया नाम रचनागत प्रवृत्तियों की दृष्टि से उचित नहीं जान पड़ता | यही बात 'चारण काल' के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है | राजस्थान में चारण, भाटों ने कुछ काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु वे इस काल की सीमाओं से बहुत पीछे हैं और उस प्रकार की रचनाएँ बहुत बाद तक होती रहीं, अतः 'चारण काल' नाम से भी इस काल की प्रवृत्तियों का बोध नहीं होता |

राहुल सांकृत्यायन ने विषय-वस्तु को दृष्टि में रखकर इस काल के लिए 'सिद्ध सामंत काल' नाम सुझाया है | इस काल में जो साहित्य लिखा गया, उसमें बौद्ध नाथ-सिद्धों द्वारा लिखा हुआ साहित्य भी मिलता है और इसी प्रकार सामंतों की प्रशंसा में या उनके आश्रय में लिखे हुए ग्रन्थ भी इस काल में मिलते हैं, किन्तु फिर भी 'सिद्ध-सामंत-काल' नाम भी पूरी तरह से इस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट नहीं करता | मिश्र बंधुओं ने अपने 'मिश्रबंधु विनोद' में 643 ई. से 1387 ई. तक के आदिकाल को 'प्रारम्भिक काल' नाम दिया, जो एक सामान्य संज्ञा है | उसके पीछे किसी प्रवृत्ति का आधार नहीं है | डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को संधि-काल और चारण-काल इन दो खण्डों में विभाजित कर दिया है | प्रथम नाम भाषा की ओर संकेत करता है और द्वितीय नाम एक वर्ग का बोध कराता है | स्पष्ट है कि ये दो नाम मिलकर भी किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाते | अतः नामकरण के सम्बन्ध में उनका मत निराधार है | विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा दिया गया 'वीर-काल' नाम केवल शुक्ल जी के नाम का रूपांतर है, जो नवीनता से चौंकाता तो है, परन्तु कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं करता |

वास्तव में 'आदिकाल' ही ऐसा नाम है, जिसे किसी-न-किसी रूप में सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है तथा जिससे हिंदी-साहित्य के इतिहास की भाषा, भाव, विचारणा, शिल्प-भेद आदि से सम्बद्ध सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं | इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर आगे का साहित्य खड़ा है | भाषा की दृष्टि से हम इस काल के साहित्य में हिंदी के आदि-रूप का बोध पा सकते हैं, तो भाव की दृष्टि से इसमें भक्तिकाल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज खोज सकते हैं | जहाँ तक रचना-शैलियों का प्रश्न है, उनके भी वे सभी रूप, जो परवर्ती काव्य में प्रयुक्त हुए, अपने आदि-रूप में मिल जाते हैं | इस काल की आध्यात्मिक, शृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है | अतः 'आदिकाल' ही सबसे अधिक उपयुक्त एवं व्यापक नाम है |

आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ

आदिकाल का साहित्य विषय वस्तुगत नाना प्रवृत्तियों तथा काव्यरूपगत संपदा की विविध पद्धतियों की दृष्टि से वस्तुतः विविधमुखी है | इसमें एक ओर नाना सम्प्रदायगत धर्म और वैराग्य का विवेचन हुआ है, वहीं दूसरी ओर इसमें शृंगार रस की अजस्र धारा और अदम्य वेगमयी वीररस की जीवंत धारा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है | आदिकाल में जनमानस की आवश्यकता के अनुरूप लोकानुरंजनकारी साहित्य का भी प्रणयन हुआ | राज्याश्रय, लोकाश्रय तथा धर्माश्रय में प्रणीत आदिकालीन साहित्य ने आगामी हिंदी-साहित्य के लिए एक सशक्त पृष्ठभूमि प्रदान की | आदिकालीन साहित्य की विषयगत एवं शिल्पगत प्रवृत्तियां निम्न प्रकार से हैं –

1. *वीर रस की प्रधानता*

यह सर्वमान्य है कि इस काल में वीर रस-प्रधान रचनाओं का बाहुल्य है | शायद यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका नामकरण 'वीरगाथा काल' कर दिया था | उस काल के कवि राजाओं के आश्रित थे इस कारण राजाओं की वीरता और उनके शौर्य की प्रशंसा का आधिक्य उनके काव्य में दिखाई पड़ता है | सभी रासो ग्रन्थ वीर रसात्मक हैं | उस समय युद्ध के बादल चारों ओर मंडरा रहे थे | विदेशी आक्रमण लगातार हो रहे थे | साथ ही अपने राज्य के विस्तार के लिए भी युद्ध राजाओं का स्वभाव बन गया था | उस काल में वीर रस के उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ जैसे- पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो आदि |

2. *युद्धों का सजीव वर्णन –*

आदिकालीन काव्य में वीर रस के साथ-साथ कवियों ने युद्ध-कौशल सजीव-प्रस्तुति अनेक रूपों में की है | युद्धों का चित्रण इस काल का मुख्य विषय रहा है | इस काल की रचनाओं

में युद्धों का वर्णन अत्यंत मूर्त्तिमान बिम्बग्राही रूप से हुआ है | इसका कारण है कि उस काल के कवि मात्र मसिजीवी नहीं थे बल्कि युद्ध-कौशल भी जानते थे | आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी रण-क्षेत्र में कूद सकते थे | इस कारण उन्हें रण-क्षेत्र और सैन्य-संगठन की बारीकियों का अच्छा ज्ञान था | इस कारण उनकी रचनाओं में युद्ध का इतना सजीव चित्रण मिलता है |

3. *शृंगार रस का प्रतिपादन*

इस काल की रचनाओं में वीर रस के साथ-साथ शृंगार रस का भी सुन्दर अंकन हुआ है | बीसलदेव रासो में शृंगार के दोनों पक्षों - संयोग-वियोग दोनों का आकर्षक चित्रण हुआ है | इसके अतिरिक्त सहायक रसों के रूप में रौद्र, वीभत्स, भयानक रस सहयोगी रसों की भूमिका में आये हैं |

4.*कल्पना की बहुलता एवं ऐतिहासिकता का अभाव*

इस काल के कवियों की कल्पनाशीलता उच्च स्तर की है | अपने आश्रयदाताओं की तुलना अद्भुत, अलौकिक शक्तियों के साथ करना इन कवियों की प्रमुख विशेषता है | किन्तु यह तथ्य है कि वीर रसात्मक ग्रंथों की प्रामाणिकता चूँकि संदिग्ध है इस कारण ऐतिहासिकता का भी घोर अभाव इन ग्रंथों में देखने को मिलता है |

5.*राष्ट्रीय एकता का अभाव*

आदिकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता का पूर्ण अभाव दिखाई देता है | यह सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता | उस काल में एक राजा के अधिकार-क्षेत्र को ही देश माना जाता था | उनकी आस्था और निष्ठा वहीं तक सीमित होती थी | पड़ोसी राज्य को वे अपना शत्रु मानते थे | उस काल में छोटे-छोटे राज्यों में भारतवर्ष विभक्त था | इस कारण एकत्र राष्ट्रीयता का घोर अभाव उस काल में दिखाई देता है |

6.*आश्रयदाताओं की प्रशंसा*

आदिकाल के अधिकांश कवि, राजाओं या सामंतों के आश्रय में रहते थे | उनको आश्रय तभी प्राप्त होता था जब वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अपने काव्य के माध्यम से करते थे | रासो काव्यों में कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के ऐश्वर्य, उनकी धर्मपरायणता, उनकी वीरता आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है |

7.*हिंदी कविता का प्रारम्भिक रूप*

आदिकालीन साहित्य की प्रामाणिकता संदिग्ध होते हुए भी उसके महत्व को भुलाया नहीं जा सकता | क्योंकि इसी काल के काव्य में आधुनिक हिंदी कविता के बीज तत्व सुरक्षित हैं| इस काल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं में गद्य और पद्य दोनों विधाओं में रचनाएँ मिलती हैं |

8.*सांस्कृतिक महत्व*

सांस्कृतिक महत्व की दृष्टि से आदिकाल में रचा गया साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है | उस काल के साहित्य के अध्ययन से तत्कालीन भारतीय संस्कृति के उत्थान और पतन के कारणों का पता चलता है | भारतीय संस्कृति के गौरवशाली अतीत का जीवंत चित्रण उस काल की रचनाओं में देखने को मिलता है |

9.*भाषा और प्रबंध काव्य-लेखन*

इस काल की मुख्य भाषा डिंगल है, जो राजस्थान की उस समय की साहित्यिक भाषा थी| जैन साहित्य पश्चिमी अपभ्रंश और सिद्ध साहित्य पूर्वी अपभ्रंश में लिखा गया | वीर काव्य डिंगल पिंगल में लिखे गए | उस समय की डिंगल भाषा में अपभ्रंश की झलक मिलती है | उस काल की महत्वपूर्ण रचना 'विद्यापति की पदावली' है,जो मैथिली भाषा में रचित है, जो एक उत्कृष्ट काव्य का उदाहरण है | उस समय की अधिकांश रचनाओं में डिंगल और पिंगल मिश्रित राजस्थानी भाषा का प्रयोग हुआ है | पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि भाषा के स्तर पर उत्कृष्ट काव्य की श्रेणी में रखे जा सकते हैं |

10. *अलंकार और छंदों का प्रयोग*

वीर काव्य में वीर रस की प्रधानता के कारण अतिशयोक्ति की अधिकता है | उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों के प्रयोग की अधिकता उस काल में दिखाई देती है | छंदों में दोहा, रोला, तोमर, गाथा और आर्या का प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन के लिए हुआ है |

11.*अंतर्विरोध का काव्य*

आदिकाल अंतर्विरोध, मतभेद और विभिन्नताओं का काल है | इसमें पूर्व और पश्चिम का भेद है | पश्चिम का साहित्य रूढ़िगत है | इसमें राजाओं की झूठी प्रशंसा है | मिथ्या नैतिकता के प्रचार की प्रवृत्ति है | पूर्व का साहित्य इसके विपरीत है | इसमें रूढ़ियों का विरोध है| ब्राह्मणवाद और जातिवाद पर प्रहार है |

12.*प्रकृति चित्रण*

इस काल के काव्य में आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में प्रकृति चित्रण मिलता है | नदियों, पर्वतों, नगरों, प्रभात और संध्या आदि के अपूर्व और सुन्दर चित्र इस काल के काव्य में दृष्टिगत होते हैं |

निष्कर्षतः यह विवेच्य है कि आदिकालीन काव्य में हमें वैविध्य के दर्शन होते हैं | इस काल का काव्य हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक काल का काव्य होने के कारण परवर्ती काव्य का दिशा-निर्देशक भी है |